गुप्त अभिलेख

1. समुद्रगुप्त का प्रयाग स्तम्भ-अभिलेख
(Allahabad Pillar Inscription of Samudragupta)

स्थान : इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश (यह मूलतः कौशाम्बी में था जहाँ से इलाहाबाद किले में लाया गया)

भाषा : संस्कृत

लिपि : ब्राह्मी

काल : समुद्रगुप्त (लगभग 335 - 76 ई॰)

विषय : सिमुद्रगुप्त का जीवन चरित तथा उपलब्धियों का विवरण

मूल पाठ

1. [यः]—कुल्यैः (?)—स्वै......तस.........
2. [यस्य ?] ....(॥) [1]
3. —मुं (?) व......
4. [स्फु]रद्वं (?)......क्षः स्फुटोद्ध [ ]सित......प्रवितत......(॥) [2]
5. यस्य प्र[ज्ञानु]षङ्गोचित-सुख-मनसः शास्त्र-त[त्व]ार्थ-भर्त्तुः
—— स्तब्धो — — नि * * * * — नोच्छृ —— —— (।)
6. [स]त्काव्य-श्री-विरोधान्बुध-गुणित-गुणाज्ञाहतानेव कृत्वा
[वि]द्वल्लोके(ऽ)वि[ना][शि( ] स्फुटबहु-कविता-कीर्त्ति-राज्यं भुनक्ति (॥) [3]
7. [आ][र्य्यो]हीत्युपगुह्य भाव-पिशुनैरुत्कर्णीण्तै रोमभिः
सभ्येषूच्छृसितेषु तुल्य-कुलज-म्लानाननोद्वीक्षि[त]ः (।)
8. [स्ने]ह-व्यालुलितेन बाष्प-गुरुणा तत्त्वेक्षिणा चक्षुषा
यः पित्राभिहितो नि[रीक्ष्य] निखि[लां][पाह्येव][मुर्वी]मिति (॥) [4]
9. [दृ]ष्ट्रवा कर्माण्यनेकान्यमनुज-सदृशान्य[द्भु]तोद्भिन्न-हर्षा
भा[ा]वैरास्वादय[न्तः] * * * * * * —— ——[के]चित् (।)
10. वीर्योत्तप्ताश्च केचिच्छरणमुपगता यस्य वृत्ते(ऽ)प्रणामे-
(ऽ)प्य[र्त्ति ?]-[ग्रस्तेषु]—— —— —— —— (॥) [5]
11. संग्रामेषु स्व-भुज-विजिता नित्यमुच्चापकाराः
श्वः-श्वो मान-प्र—— —— —— —— —— (।)

12. तोषोतुङ्गैः स्फुट-बहु-रस-स्नेह-फुल्लैर्म्मनोभिः
पश्चात्तापं व ——————— ——— म[?] स्य[ा]द्वसन्त[म् ?] (॥) [6]

13. उद्वेलोदित-बाहु-वीर्य्य-रभसादेकेन येन क्षणा-
दुन्मूल्याच्युत-नागसेन-ग[1] — ———— — ————— — (—)

14. दण्डैर्ग्राहयतैव कोतकुलजं पुष्पाह्वये क्रीडता[2]
सूर्य्ये (?) नित्य(?)— ——— तट ——————— (॥) [7]

15. धर्म्म-प्राचीर-बन्धः शशि-कर-शुचयः कीर्त्तयः स-प्रताना
वैदुष्यं तत्त्व-भेदि प्रशम ———, कु—यमु(सु ?)— तार्त्थम् (?) (।)

16. [अद्धयेयः]सूक्त-मार्ग्गः कवि-मति-विभवोत्सारणं चापि काव्यं
को नु स्याद्यो (ऽ)स्य न स्याद्गुण-मति-[वि]दुषां ध्यानपात्रं य एकः (॥) [8]

17. तस्य विविध-समर शतावतरण-दक्षस्य स्वभुज-बल-पराक्क्रमैकबन्धोः पराक्क्रामाङ्कस्य परशु शर-शङ्कु-शक्ति-प्रासासि-तोमर-

18. भिन्दिपाल-न[ा]राच-वैतस्तिकाद्यनेक-प्रहरण-विरूढाकुल-व्रण-शताङ्क-शोभा-समुदयो-पचित-कान्ततर-वर्ष्मणः

19. कोसलमहेन्द्र-माह[ा]कान्तारकव्याघ्रराज-कौरालकमण्टराज-पैष्टपुरक-महेन्द्रगिरि-कौट्टूरक स खामिदत्तैरण्डपल्लकदमन-काञ्चेयकविष्णुगोपावसमुक्तक-

20. नीलराज वैङ्गेयकहस्तिवर्म्म-पालक्ककोग्रसेन-दैवराष्ट्रकुबेर-कौस्थलपुरक-धनञ्जय-प्रभृति-सर्व्वदक्षिणापथराज-ग्रहण-मोक्षानुग्रह-जनित-प्रतापोन्मिश्र-माहाभाग्यस्य[3]

21. रुद्रदेव-मतिल-नागदत्त-चन्द्रवर्मा-गणपतिनाग-नागसेनाच्युत-नन्दि-बल-वर्म्मा-द्यनेकार्य्यावर्त्त-राज-प्रसभोद्धरणोद्धृत्त-प्रभाव-महतः[4] परिचारकीकृत-सर्व्वाटविक-राजस्य

22. समतट-डवाक-कामरूप-नेपाल-कर्त्तृपुरादि-प्रत्यन्त-नृपतिभिर्म्मालवार्जुनायन-यौधेय-माद्रकाभीर-प्रार्जून-सनकानीक-काक-खरपरिकादिभिश्च[5] सर्व्व-कर-दानाज्ञाकरण-प्रणामागमन-

---

1. सम्भवतः यह गणपति का पहला अक्षर है।
2. केत परिवार अपनी सेना द्वारा बन्दी बनाया गया जब वह पाटलिपुत्र में खेल रहा था।
3. कोशल = दक्षिणी कोशल (रायपुर, संभलपुर, विलासपुर), महाकान्तार = जंगली क्षेत्र, व्याघ्रराज = व्याघ्रदेव, कोरालक = कुणाल जल, (कोलार ताल एलौरा के पास), पैष्टिपुर = पीठापुरम्, महेन्द्रगिरि = महेन्द्र पर्वत, कौट्टूर = कोठूर महेन्द्रगिरि के पास, काञ्चेय = काञ्जीवरम्, अवमुक्त = अभी अज्ञात, वेंगी = आधुनिक वेंगी, पल्लक = पलक्कड, देवराष्ट्र = देवराठे गाँव खानपुर तालुका, कुस्थलपुर = कुशस्थलयु (द्वारका)
4. रुद्रदेव = रुद्रसेन वाकाटक या रुद्रसेन III (शुंगवंश का पश्चिमी भारत का शासक, मतिल = बुलन्दशहर का, चन्द्रवर्मा = सुसनिया पर्वत का चन्द्रवर्म, गणपति नाग, नागसेन = नाग शासक पद्मावती के, अच्युत = बरेकी के नन्दिन को अच्युत के साथ जोड़कर समास अच्युतनन्दिन बना है।
5. समतट = उत्तरी पूर्वी बंगाल आधुनिक बाद-कन्त जिला-तियेरा, डवाक = दबोक (नवगाँव, आसाम), कामरूप = गोहाटी (आसाम), करत्रिपुर = करतारपुर (जालंधर) तथा कदूरिया (गढ़वाल)।
मालव = राजस्थान का पश्चिमी मालवा के वासी, आर्जुन्यायन = मथुरा के पास से प्राप्त मुद्राएँ, यवधेय = जोहियावार वासी, प्रार्जुन = नरसिंहपुर, म० प्र० वासी, सनकानिक = पूर्वी मालवा, काक = कोकनाडवोट (सांची, म० प्र०) मद्रक = शाकल वासी (आधुनिक स्यालकोट पंजाब, पाकिस्तान), आमीर = अपन्त (उत्तरी कोंकण) वासी।

23. परितोषित-प्रचण्ड-शासनस्य अनेक-भ्रष्टराज्योत्सन्न-राजवंश-प्रतिष्ठापनोद्भूत-निखिल-भु[व]न-[विचरण-शा]न्त-यशसः दैवपुत्रषाहिषानुषाहि-शकमुरुंण्डैः सैंहळकादिभिश्च

24. सर्व्व-द्वीप-वासिभिरात्मनिवेदन[1]-कन्योपायनदान-गरुत्मदङ्कस्वविषयभुक्तिशासन-[य]ाचनाद्युपाय[2]-सेवा-कृत-बाहु-वीर्य्य-प्रसर-धरणि-बन्धस्य प्रिथिव्यामप्रतिरथस्य[3]

25. सुचरित-शतालङ्कृतानेक-गुण-गणोत्सिक्तिभिश्चरण-तल-प्रमृष्टान्य-नरपति-कीर्त्तेः साध्वसाधूदय-प्रलय-हेतु-पुरुषस्याचिन्त्यस्य[4] भक्तपवनति-मात्र-ग्राह्य-मृदुहृदयस्यानुकम्पावतो-(ऽ)नेक-गो-शतसहस्र-प्रदायिन[:]

26. [कृप]ण-दीनानाथातुर-जनोद्धरण-समन्त्रदीक्षाभ्युपगत-मनसः[5] समिद्धस्य विग्रहवतो लोकानुग्रहस्य धनद-वरुणेन्द्रान्तक-समस्य[6] स्वभुज-बल-विजितानेक-नरपति-विभव-प्रत्यर्प्पणा-नित्यव्यापृतायुक्तपुरुषस्य[7]

27. निशितविदग्धमति-गान्धर्व्वललितैर्व्रीडित-त्रिदशपतिगुरु-तुम्बुरुनारदादेर्व्विद्वज्जनोप[8]-जीव्यानेक-काव्य-विक्रियाभिः प्रतिष्ठित-कविराज-शब्दस्य सुचिर-स्तोतव्यानेकाद्भुतोदार-चरितस्य

28. लोकसमय-विक्रयानुविधान-मात्र-मानुषस्य लोक-धाम्नो देवस्य महराज-श्री-गुप्त[9]-प्रपौत्रस्य महाराज-श्री-घटोत्कच-पौत्रस्य महाराजाधिराज-श्री-चन्द्रगुप्त-पुत्रस्य

29. लिच्छवि-दौहित्रस्य महादेव्यां कुमारदेव्यामुत्फन्नस्य[10] महाराजाधिराज-श्री-समुद्रगुप्तस्य सर्व्व-पृथिवी-विजय-जनितोदय-व्याप्त-निखिलावनितलां कीर्त्तिमितस्त्रिदशपति-

30. भवन-गमनावाप्त-ललित-सुख-विचरणामचक्षाण इव भुवो बाहुरयमुछ्रितः स्तम्भः (।) यस्य।

प्रदान-भुजविक्क्रम-प्रशम-शास्त्रवाक्योदयै-
रुपर्य्युपरि-सञ्चयोच्छ्रितमनेकमार्ग्गं यशः (।)

---

1. दैवपुत्र = देवपुत्र कुषाण राजाओं की उपाधि. षाहि कुषाण सरदार होगा और षाहानुषाहि = उनका स्वामी किन्तु दैवपुत्रषाहिषाहानुषाहि का अभिप्राय कुषाण शासक से है। मुरुण्ड सीथियन जनजाति होगी या शक-मुरुण्ड = शकों का स्वामी होगा। सैंहलक = सिंहल सिलोनवासी। यहाँ सर्वद्वीपवासी के तात्पर्य जावा सुमात्रा द्वीपों के वासी से है।
2. गरुत्मदङ्क-स्वविषयभुक्ति-शासन-याचन से अभिप्राय है गरुड़ मुहरयुक्त। शासन की आज्ञा प्राप्त करना अपने राज्य के लिए। गरुड़ गुप्त शासकों का राजचिह्न था। उनकी मुद्राओं पर भी यह अंकित है।
3. पाठ : पृथिव्या।
4. समुद्रगुप्त अपने को विष्णु का जो गौरव के दाता और दुष्ट संहारक थे। गीता में कहा गया है—परित्राणाय साधुनां विनाशय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।। समुद्रगुप्त एक वैष्णव था। पर उसके उत्तराधिकारी अपने को भागवत कहते हैं पर यह उपाधि समुद्रगुप्त नहीं प्रयोग किया है। डा० सरकार की राय में समुद्रगुप्त के वैष्वण धर्म और उत्तराधिकारियों के भागवत धर्म में अन्तर होगा।
5. पाठ : उङएघरण-मन्त्र
6. राजा में देवत्व का ज्ञान मिलता है । (मनु. ७.)
7. आयुक्त = स्थानीय शासक
8. त्रिदशपतिगुरु=वृहस्पति; तुम्बरु = एक गांधर्व; नारद = वीणा के अन्वेषक ऋषि।
9. इसका मूल नाम 'गुप्त' है 'श्री' शब्द विशेषण है।
10. पाठ : मुत्पन्न०

31. पुनाति भुवनत्रयं पशुपतेर्ज्जटान्तर्गुहा-
निरोध-परिमोक्ष-शीघ्रमिव पाण्डु गाङ्गं (पयः) (।।) (९)

एतच्च काव्यमेषामेव[1] भट्टारकपादानां दासस्य समीप-परिसर्प्पणानुग्रहोन्मीलित-मतेः

32. खाद्य(कू)टपाकिकस्य महादण्डनायक-ध्रुवभूति-पुत्रस्य सान्धिविग्रहिक-कुमारामात्य-म[हादण्डनाय]क-हरिषेणस्य[2] सर्व्व-भूत-हित-सुखायास्तु

33. अनुष्ठितं च परमाभट्टारक-पादानुध्यातेन महादण्डनायक-तिलभट्टकेन

हिन्दी अर्थान्तर

1. ...अपने कुलवालों द्वारा

2. (जिसका ?)...

3. ......

4. ...... विस्तृत ?

5. विद्वानों के सत्संग में प्रसन्न मन वाले शास्त्रों के तत्वार्थ का पोषक—

6. जो विद्वज्जनों के बहुत से गुणों की शक्ति से सत्काव्य के विरोधों को दबा कर बहुत-सी स्फूट काव्य से प्राप्त कीर्ति राज्य का भोग करता है।

7. जिसके दरबारियों में हर्ष का उच्छ्वास था एवं जिसे समान कुल वाले म्लान मुख से देखते थे, पिता उसे भाव प्रवण एवं रोमांच सहित गले लगाते हुए कहा कि तुम वास्तव में आर्य हो,

8. स्नेहाकुल, आँसू युक्त तत्वदर्शी नेत्रों से देखकर, यह कहा कि 'तुम सम्पूर्ण पृथ्वी का पोषण करो'।

9. जिसके अनेक मानवेतर कार्यों को देख कुछ लोग अत्यन्त प्रसन्नता से भावपूर्वक आस्वादन करते थे।

10. और कुछ लोग जिसके शौर्य से सन्तप्त होकर शरणागत होते हुए उसको नमन करते थे।

11. जिसने युद्धों में नित्य अपकार करने वाले को जीता था

12. आनन्द से भरे, बहु हर्ष एवं स्नेह से युक्त मन से ...... पश्चाताप ...... वसन्त।।

13. जिसने सीमा से बड़े बाहु द्वारा अकेले ही अच्युत तथा नागसेन को अविलम्ब जड़ से उखाड़ दिया...

14. जिसने पुष्प नाम के नगर को क्रीड़ा करते हुए स्वाधीन किया तथा अपने सैन्य द्वारा जो कोटकुलोत्पन्न था उसको पकड़वा लिया

15. धर्म प्राचीर की तरह जिसकी कीर्ति चन्द्र रश्मि की तरह उज्ज्वल और विस्तृत थी तथा जिसकी विद्वत्ता शास्त्र तत्वभेद करने वाली थी...

16. वेदों द्वारा प्रतिपादित मार्ग जिसका ध्येय था तथा कवि के मति-वैभव को स्पष्ट व्यक्त करने वाली उसकी कविता थी...ऐसा क्या गुण था जो इसमें नहीं था जो गुण और प्रतिभा ज्ञाताओं का एकमात्र ध्यान पात्र है।

---

1. हरिषेण की यह रचना चम्पू में है।
2. खाद्यटपाककक = राज्य भोजनालय का कर्मचारी। महादण्डनायक = एक सैनिक अधिकारी। सान्धिविग्रहिक = गवर्नर। कुमारामात्य = युद्ध और संधि का मंत्री।

17. सैकड़ों युद्धों में उतरने में दक्ष, अपने भुजबल पर एक मात्र भरोसा करने वाला, पराक्रम वाला, फरसा, शर, शैकू, शक्ति, प्रास, असि, तोमर

18. भिन्दिपाल, नाराच, वैतस्तिक आदि अनेक शस्त्रों प्रहार से जनित सैकड़ों घावों के चिह्नों से जिसका शरीर सुशोभित था।

19. कोसल के महेन्द्र, महाकान्तार के व्याघ्रराज, केरल के मण्टराज, पिष्टपुर के महेन्द्रगिरि, कोट्टूर के स्वामिदत्त, एयण्डपल्ल के दमन, काँची के विष्णुगोप, अवमुक्त के

20. नीलराज, बेंङ्गी के हस्तिवर्मन, पलक्क के उग्रसेन, देवराष्ट्र के कुबेर, कुस्थलपुर के धनंजय आदि समस्त दक्षिणापथ के राजाओं के ग्रहण करने एवं तदुपरान्त अनुग्रह द्वारा उनको मुक्त करने से उत्पन्न प्रताप से संयुक्त महाभाग्य वाला था।

21. जिसने रुद्रदेव, मतिल, नागदत्त, चन्द्रवर्मन, गणपतिनाग, नागसेन अच्युत नन्दि, वलवर्मन आदि अनेक आर्थावर्त के राजाओं को उन्मूलित कर अपना महान प्रभाव बढ़ाया तथा सम्पूर्ण अटवी प्रदेश (जंगल) के राजाओं का अपना परिचारक बनाया।

22. समतट, डवाक, कामरूप, नेपाल, कर्तृपुर आदि सीमा के राजाओं तथा मालव, आर्जुनायन, यौधेय, माद्रक, आभीर, प्रार्जुन, सनकानीक, काक, खनपरिक, आदि सभी जातियाँ करों के देने, आज्ञा पालन, प्रणाम तथा

23. प्रचण्ड शासन प्रति सन्तोष आगमन द्वारा व्यक्त करती थीं, जो अनेक च्युत राज्यों तथा नष्ट राजवंशों की पुनः स्थापना से उत्पन्न समस्त भुवनों में व्याप्त शान्त यशवाला था तथा जिसे देवपुत्र शाहि शाहानुशाहि

24. शक मुरुण्ड तथा सिंहल आदि द्वीपों के निवासी आत्म समर्पण, पैर पर अपनी कन्याओं का समर्पण करते थे तथा गरुड-चिह्न युक्त अपने विषय एवं भुक्ति के शासन की याचना करते थे। इस प्रकार की सेवाओं से जिसमें भुजबल के विस्तार से पृथ्वी को बाँध लिया था तथा समस्त पृथ्वी पर जिसका कोई शत्रु नहीं था।

25. शत सत्कार्यों से भूषित, अपने बहुसंख्यक गुणों के समदुाय से अन्य अनेक राजाओं की कीर्ति को मिटाने वाला जो साधु के लिए उदय तथा असाधु के लिए अन्त का कारण था, अचिन्त्यपुरुष, भक्तिपूर्वक नमन मात्र से जिसका मृदुल हृदय वश में हो जाता था, अनुकम्पावान, जो शतसहस्र गायों को दान करने वाला था।

26. कृपण, दीन, अनाथ एवं व्यग्र लोगों के कष्ट-निवारण तथा दीक्षा में लगे अन्तःकरणवाले जो लोकानुकम्पा का प्रतिमा था जो धनद, वरुण, इन्द्र, यम, सदृश, अपने वाहुबल से विजित अनेक राजाओं की सम्पत्ति लौटाने में नित्य लगा हुआ था।

27. तीक्ष्ण एवं विदग्धमति, वाद्य एवं कण्ठ संगीत द्वारा इन्द्र, गुरु वृहस्पति तुम्बुरु तथा नारदादि को लज्जित करने वाला था, विद्वानों की जीविकार्जनोपयोगी अनेक काव्यों की रचना द्वारा 'कविराज' उपाधि को प्रतिष्ठा करने वाला था, चिर-काल तक स्तुत्य जिसके अनेक विलक्षण एवं उदार कार्य थे।

28. जो केवल लौकिक-कार्य सम्पादन से ही मनुष्य था अन्यथा भूलोकवासी देवता था, वह महाराज श्रीगुप्त का प्रपौत्र, महाराज श्रीघटोत्कच का पौत्र, महाराजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्त का पुत्र था जो

29. लिच्छवी वंश की लड़की का लड़का, जो महादेवी कुमारदेवी से उत्पन्न था। महाराज श्री चन्द्रगुप्त के समस्त पृथ्वी की विजय द्वारा उत्पन्न अभ्युदय से समस्त संसार व्याप्त है यहाँ पृथ्वी से इन्द्र के

30. भवन पहुँचने वाली, सुन्दर-सुखमय गति वाली कीर्ति को घोषित करता हुआ, पृथ्वी की भुजा की भाँति यह स्तम्भ ऊँचा है। जिसका यश

31. दान, बाहु-विक्रम, प्रज्ञा एवं शास्त्र-विधान के अभ्युदय से, उच्चोच्च उन्नत होता हुआ, अनेक मार्गों से त्रैलोक्य को, शिव की जटा के अन्तः गुहा-बन्ध से मुक्त त्वरित पीले गंगाजल की भाँति निकलकर पवित्र करता है।

32. यह काव्य इन्हीं स्वामी के चरणों के दास, समीप रहने के अनुग्रह से विकसित मतिवाले, महादण्डनायक ध्रुवभूति के पुत्र, खाद्यत्पाकिक, संधिविग्राहक, कुमारामात्य हरिषेण ने रचा। यह समस्त प्राणियों के हित एवं सुख का हो।

33. परमभट्टारक के चरणों का चिन्तन करने वाले महादण्डनायक द्वारा इसकी स्थापना की गयी।

ऐतिहासिक महत्त्व

इलाहाबाद किले में अब स्थापित, मूल रूप से कौशाम्बी में स्थापित कौशाम्बी के अशोक स्तम्भ पर अशोक के लेख के नीचे गुप्त ब्राह्मी लिपि में समुद्रगुप्त का यह लेख उत्कीर्ण है। सम्भवतः यमुना नदी द्वारा यह स्तम्भ कौशाम्बी से बहाकर यहाँ लाकर स्थापित किया गया होगा जिसके नीचले भाग में जहाँगीर का भी लेख होने से अनुमान है कि जहाँगीर ने ही इसको मूल स्थान से हटाकर यहाँ स्थापित कराया होगा। इसे महादण्डनायक ध्रुवभूति के पुत्र समुद्रगुप्त के कुमारामात्य एवं संधिविग्रहिक हरिषेण नामक कवि ने उत्कीर्ण कराया था। यह मात्र अकेला अभिलेख समुद्रगुप्त के शासन और व्यक्तित्व के विषय में अब तक के प्राप्त अभिलेखों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है क्योंकि उसके अन्य अभिलेख एरण अभिलेख, गया और नालन्दा के ताम्रलेख हैं जिनमें एरण का अभिलेख कोई विशेष सूचना नहीं देता केवल एरण पर उसका अधिकार बताता है जबकि गया और नालन्दा के ताम्रपत्र अभिलेखों को जाली माना जाता है। इस अभिलेख के अभाव में समुद्रगुप्त की उपलब्धियों के विषय में हम अन्धकार में पड़े रह जाते। डा॰ उदयनारायण राय ने कहा है...this epigraphic record is a unique one among Indian annals in its wealth of detail.

लेख का नाम—इस स्तम्भ में समुद्रगुप्त की प्रशस्ति का उल्लेख है तथा यह प्रयाग में है। इससे इसको **'प्रयाग प्रशस्ति'** कहा जाता है। चूँकि इसका लेखक हरिषेण है इससे इसको **'हरिषेण की प्रयाग प्रशस्ति'** नाम से भी जाना जाता है। अंग्रेजी में इसे Allahabad Pillar Inscription कहते हैं।

लेख की तिथि—यह तिथिविहीन लेख है। इसमें समुद्रगुप्त के विजयों का आद्योपान्त उल्लेख है। गद्दी पर बैठने के बाद, लेख से विदि है, सिंहासन को सुरक्षित करने के लिए उसको अपने स्वजनों से युद्ध करना पड़ा। उसके बाद उसने भारत के विभिन्न भागों में अपनी विजय पताका फहराई। वह विद्वानों का आश्रय दाता तथा अनेक विद्याओं-संगीत आदि में कुशल था। ये सभी कार्य शान्तिकाल के रहे होंगे जबकि उसके पास पर्याप्त समय रहा होगा। अतः विजय के बाद एक लम्बे समय के व्यतीत होने पर यह लेख लिखा गया होगा। किन्तु जब समुद्र ने अश्वमेघ यज्ञ किया था उसके पहले का यह लेख है क्योंकि इसमें उसके अश्वमेध यज्ञ का वर्णन नहीं है जबकि उसके 'अश्वमेध प्राक्रमाङ्कः' उत्कीर्ण सिक्के तथा एरण अभिलेख इसकी पुष्टि करते हैं। फिर भी राज्यारोहण के बहुत बाद का यह अभिलेख होगा। इसका शासन काल इतिहासकारों ने 335 ई॰ से 375 ई॰ माना है। डा॰ डिस्कल्कर का अनुमान है कि यह लेख लगभग 350 ई॰ का उत्कीर्ण होगा।

क्या यह प्रशस्ति समुद्रगुप्त के मृत्योपरान्त उत्कीर्ण हुई थी?

डा० फ्लीट ने जब पहली बार इस लेख का सम्पादन किया तभी इसे समुद्रगुप्त के मृत्योपरि लिखा गया बताया। यही बात 'कार्पस' के प्रकाशित संस्करण में भी है। इसके पीछे निम्न तर्क दिए गए हैं—

1. 30वीं पंक्ति का पाठ 'आचक्षाणः वभूव' पढ़ा गया। इस आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि उसकी मृत्यु हो चुकी थी।

2. इस पंक्ति में 'त्रिदशपति भवनगमन' का अर्थ समुद्रगुप्त को 'इन्द्रलोक गमन करने वाला' लिया गया है। इसको उसके मृत्यु का बोधक मानकर उसके मृत्योपरान्त इस लेख को उत्कीर्ण कराना कहा गया है।

पर ये निम्न आधार पर गलत लगते हैं—

1. 30वीं पंक्ति का शुद्ध पाठ है 'आचरण इव भुवो'। इस आधार पर समुद्रगुप्त की मृत्यु का अर्थ निकलता ही नहीं।

2. 'त्रिदशपति भवनगमन' का अभिप्राय समुद्रगुप्त की कीर्ति का स्वर्ग तक पहुँचना है न कि उसके शरीर का।

3. यहाँ भूतकाल की क्रिया का अभाव है। इसमें मेहरौली स्तम्भ लेख की तरह भूतकालिक क्रिया का उल्लेख नहीं है जिससे समुद्रगुप्त मृत्योपरान्त इसे माना जाय।

4. यदि यह बाद के शासक के काल में लिखा होता तो उसका भी नाम इसमें होता। कर्मदण्डा शिवलिंग अभिलेख से विदित है कि उत्कीर्ण कराने वाला कुमारगुप्त के पिता के समय का मन्त्री था। पर यहाँ हरिषेण तो संधिविग्रहक और महादण्डनायक के पद पर आसीन है जब समुद्रगुप्त के गद्दी पर है।

5. इस लेख में हरिषेण का कथन 'एतमेव भट्टारकपादानां' से स्पष्ट है 'इसी' भट्टारक के चरण कमलों में। अतः यह समुद्र के जीवन काल को उजागर करता है।

6. समुद्रगुप्त के अश्वमेध प्रकार के सिक्कों तथा एरण अभिलेख से इसके अश्वमेध यज्ञ का ज्ञान मिलता है जिसका उल्लेख यहाँ न होना इस यज्ञ सम्पादन के पूर्व का यह लेख ज्ञात होता है।

7. इसमें समुद्रगुप्त के उत्तराधिकारियों की उपाधियाँ जिनका प्रयोग उन्होंने किया है यथा—'चतुरुदधिसलिलास्वादितयशसा' आदि नहीं है।

अतः मान्य नहीं होता कि समुद्रगुप्त की मृत्यु के बाद का यह अभिलेख होगा।

तत्कालीन भारत की राजनीतिक अवस्था का ज्ञान

इस अभिलेख में समुद्रगुप्त की विजय का उल्लेख करते हुए प्रशस्तिकार ने भारत के केवल मध्य तथा पश्चिमी क्षेत्र को छोड़कर शेष भागों की राजनीतिक अवस्था का वर्णन किया है जिसे समुद्रगुप्त ने जीता था। इनमें से कहीं राज्य और राज्य व्यवस्था, कहीं केवल राज्य, कहीं केवल राजा, कहीं केवल क्षेत्रीय विभाजन का उल्लेख है जो विभिन्न प्रकार की शासन व्यवस्था का ज्ञान विभिन्न क्षेत्रों में देता है। इसमें से यदि हम समुद्रगुप्त की विजय को निकाल दें तो शेष विवरण से राजनीतिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त होता है। इसमें सातवाहनों तथा कुषाणों के बाद उभरे हुए नए राज्यों के विवरण से गुप्तपूर्व भारत की राजनीतिक स्थिति की गुत्थी भी, जिसे डा० जायसवाल ने अंधकार युग का नाम दिया है, सुलझ जाती है। इससे तत्कालीन भारत की निम्न राजनीतिक स्थिति का ज्ञान होता है।

1. सीमा-प्रदेश के राज्य

इनमें हैं—समतट (समुद्रतटीय भाग = दक्षिण-पूर्वी बंगाल), डवाक (फ्लीट ने ढाका, स्मिथ ने दीनाजपुर के पास, बसाक ने ढाका का उत्तरी भाग माना है। पर वरुआ का मत ही अब मान्य है कि यह आसाम में नवगांग जिले का डवोक है), कामरूप (आसाम प्रान्त का गोहाटी), नेपाल (काठमाण्डू की घाटी का प्रदेश जहाँ के शासक लिच्छवि थे) तथा कर्तृपुरा (फ्लीट कर्तापुर, रायचौधरी गढ़वाल कुमायूं का भाग, पर अब मान्य है कश्मीर का एक भाग जहाँ के शासक 'क्रितिय' थे)। इनके सन्दर्भ में 'नृपतिमिः' शब्द प्रयुक्त है। अतः उत्तरी पश्चिमी तथा पूर्वी सीमा के ये राजतन्त्रयी राज्य थे।

2. पश्चिमी भारत के राज्य

पश्चिमोत्तर सीमा से नीचे हम आज के हरियाणा, पंजाब, राजस्थान में पहुँचते हैं। वहाँ छोटे-छोटे नौ गणराज्यों का उल्लेख है—मालव (अजमेर-टोंक-मेवाड़ प्रदेश में बसे थे) : आर्जुनायन (देहली, आगरा, जयपुर के निवासी) : यौधेय (दक्षिण-पूर्वी पंजाब तथा उत्तरी राजस्थान में थे) : मद्रक (रावी-चिनाव दोआब के रहने वाले पंजाब का मद्र देश), आभीर (पंजाब, पश्चिमी राजस्थान तथा मध्य प्रदेश के अहिरवाड़ा क्षेत्र में) : प्रार्जुन (भण्डारकर तथा स्मिथ इन्हें नरसिंहपुर-मध्यप्रदेश का मानते हैं जबकि डा॰ पी॰ एल॰ गुप्ता उत्तर-पश्चिम का), सनकानिक (मध्य प्रदेश में थे), खरपरिक (दमोह जिला–मध्य प्रदेश)। ये जनता द्वारा शासित गणराज्य डा॰ मजुमदार के अनुसार दो भागों में विभक्त थे—एक में मालव, खरपरिक, आर्जुन्यायन और मद्र तथा दूसरे में शेष पाँच थे। पर इस विभाजीकरण का आधार स्पष्ट नहीं है।

3. आर्यावर्त के राज्य

पंजाब और राजस्थान से नीचे हम आधुनिक उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश एवं बंगाल के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। इसके शासकों को 'आर्यावर्त' का राजा कहा गया है। आर्यावर्त की सीमा मनु और उसके भाष्यकार मेधातिथि के अनुसार पूर्वी समुद्र से पश्चिमी समुद्र तक तथा हिमालय से विंध्य तक थी। इसके पश्चिमी भाग में गणराज्य थे जिनका उल्लेख हुआ है। शेष राजाओं के लिए आर्यावर्त का राजा कहा गया है। यही उत्तरापथ भी था।

अभिलेख में यहाँ के राजाओं का केवल नाम दिया गया है। उनके राज्य का नाम नहीं। ये हैं—रुद्रदेव। (इसकी समता शक क्षत्रप रुद्रदामन या रुद्रसेन तृतीय से करना उचित नहीं क्योंकि शकों का उल्लेख अलग नीचे मिला है। डा॰ गोयल ने अनेक तर्कों पर इसे वाकाटक शासक रूद्रसेन प्रथम सिद्ध किया है पर बहुत प्रामाणिक नहीं लगता क्योंकि वाकाटक मूलतः दक्षिण के राजा थे। पर यह कौशाम्बी का शासक होगा जो समुद्रगुप्त के राज्यारोहण के समय विषम परिस्थिति में उभर कर आया होगा। डा॰ नागर और चट्टोपाध्याय का भी यही मत है, मतिल (बुलन्द शहर और उसके पास का), नागसेन (पद्मावती, ग्वालियर-मध्य प्रदेश का आधुनिक पदमपताया जो नरवर से 25 मील उत्तर पूरब की ओर है), गणपति नाग (भण्डारकर के अनुसार विदिशा का शासक पर, डा॰ अल्टेकर ने सिक्कों के आधार पर मथुरा का बताया है), अच्युत (अहिछत्र = उत्तर पांचाल की राजधानी-आधुनिक बरेली का रामनगर), नन्दिन (गोयल नागराजा मानते हैं पर अच्युत के साथ प्रयोग होने से यह उसी के साथ का शासक होगा), नागदत्त (डिस्कल्कर को इसकी स्थिति स्पष्ट नहीं है। पर मथुरा के पड़ोसी नाग परिवार से ही सम्बन्धित होगा तभी नाग शब्द जुड़ा है), चन्द्रवर्मा

(बंगाल का क्योंकि वहाँ के सुसुनिया-लेख में उल्लिखित है), बलवर्मा (गोपाल चन्द्र वर्मा का वंशज, जायसवाल कौमुदी महोत्सव का कल्याण वर्मा मानते हैं पर उचित लगता है। वसु दण्डेकर का मत कि पश्चिमी आसाम का शासक था जो हर्ष के समकालीन भास्कर वर्मा का पूर्वज होगा)।

डा॰ रैप्सन ने इन नौ नामों को नौ नन्द राजा माना है जो अमान्य है। चन्द्रवर्मा, वलवर्मा और मतिल नन्द वंशीय नहीं हो सकते।

4. आटविक राज्य

आटविक का अर्थ है वन्य। अतः ये वन्य प्रदेश के राज्य थे। डा॰ रायचौधरी के अनुसार यह गाजीपुर से जबलपुर तक फैला था। पर गाजीपुर तो मगध का भाग था जहाँ का वह स्वयं महाराजधिराज था। बुन्देलखण्ड से प्राप्त दो अभिलेखों में महाराज हस्ती को डहाल और पड़ोस के अठारह आटवी राज्यों का स्वामी बताया गया है। डहाल जबलपुर के पास का भाग था। अतः यह जबलपुर से छोटा नागपुर तक यह भाग रहा होगा। यहाँ न राजा का नाम है न राज्य का केवल क्षेत्र का नामोल्लेख है।

5. दक्षिणापथ के राज्य

उत्तरापथ या आर्यावर्त से हम दक्षिणापथ में पहुँचते हैं। राजशेखर ने विन्ध्य के दक्षिण में स्थित नर्मदा नदी को उत्तरापथ और दक्षिणापथ की सीमा बताया है। यहाँ छोटे-छोटे राज्य थे। ऐसे 12 राजाओं और उनके राज्य का नाम यहाँ दिया गया है। इनमें पहले राज्य का नाम है फिर राजा का। इसके अध्ययन में मूल कठिनाई है समास वाले पदों को तोड़ने तथा राज्यों के पहचान की। ये हैं— कोसल के महेन्द्र (दक्षिण कोसल जिसमें सम्मिलित थे रायपुर, विलासपुर, सम्भलपुर, दुर्ग तथा गंजाम जिले का कुछ भाग जो मध्य प्रदेश में हैं), महाकान्तार का व्याघ्रराज (महावन, मजुमदार के अनुसार उड़ीसा जयपुर नामक वन्य प्रदेश), कोराल का मण्टराज (सरकार ने कोलेर झील के निकट का प्रदेश, फ्लीट ने कैरलक पढ़कर केरल से समता किया है), पिष्टपुर का महेन्द्रगिरि (गोदावरी जिले का पीठापुर), कोट्टूर का स्वामिदत्त (डेब्रूएल ने गंजाम जिले के कोट्टूर, आयंगर ने पीथापुरम के समीप का कोट्टूरू माना है। पर सही है स्मिथ का मत कि यह कोयम्बटूर में था), एरण्डपल्ल का दमन (फ्लीट ने खानदेश में एरण्डोल, रामदास ने विजगापट्टम के एंडिपल्ली से माना है। पर डेब्रएल का मत ठीक लगता है कि उड़ीसा के तनटवर्ती चिकाकोल के समीप एरण्डपल्ली है), कांची का विष्णुगोप (कांजीवरम्, पल्लवों की राजधानी), अवमुक्त का नीलराज (गोदावरी जिले का अवमुक्ति क्षेत्र), वेंगी का हस्तिवर्म (मद्रास के समीप वेगी या पेड-वेग्गी), पालक्क का उग्रसेन (स्मिथ ने मालवार जिले के उत्तर का पालघाट माना है, पर मान्य है डैब्रुएल का मत कि यह नेल्लोर जिले का पलक्कड़ है), देवराष्ट्र का कुवेर (फ्लीट ने महाराष्ट्र, सुथियंथियर ने महाराष्ट्र के खानपुर का महाराठे गाँव, पर डेब्रएल ने ठीक पहचाना है विजगापट्टम जिले का एलमंञ्चीकलिंग देश) तथा कुस्थलपुर का धनञ्जय (वार्नेट ने उत्तरी आर्काट का कुत्तलूर, स्मिथ ने द्वारका पर, डा॰ गोपाल ने अज्ञात कहा है)।

6. दक्षिणी पश्चिमी भारत की विदेशी जातियाँ

पश्चिम भारत के राज्यों तथा राजाओं की चर्चा इसमें नहीं है। पराजित. कुछ विदेशी जातियों का नामोल्लेख मात्र है। ये पश्चिमी भारत के पहले के विदेशी शासकों के वंशज हैं— 'देवपुत्रषहवाहानुवाहिशकमुरुण्डैः। 'देवपुत्र' उपाधि महाकुषाण परिवार की थी। इस समय किदार कुषाण इनका उत्तराधिकारी था जिसके लिए इसका प्रयोग किया गया होगा। डा॰ आर॰ एस॰ शर्मा

के अनुसार कुषाणों ने स्वयं नहीं अपितु भारतीयों ने इनके लिए यह उपाधि प्रयोग किया था। इनके सिक्कों पर 'शा' (षाहि) अंकित है। इसी से देवपुत्रषाहि यहाँ कुषाण जातीय राजा का बोधक है। 'षाहुनाषाही' ईरानी राजाओं की उपाधि थी जिसका रूप पह्लव सिक्कों पर 'शाओ' तथा 'शाओनानोशाओ', यूनानी सिक्कों पर 'वैसीलिओस' तथा 'बैसीलिओस वैसीलिओन', कुषाण सिक्कों पर 'महरज' तथा 'महरज रजदिरज' मिलता है। इसी का संस्कृत रूप 'राजा' 'राजाधिराज' है। 'शकमुरुण्डैः' (शक और मुरुण्ड) में शक एक विदेशी जातियाँ थीं जो पश्चिमी भारत में शासन करती थीं। मुरुण्ड शकों की एक जाति विशेष का नाम था। ये पश्चिमी भारत के शक-क्षत्रप रहे होंगे। इस प्रकार पश्चिमी भारत में कुषाण, ईरान तथा शक जातियाँ थीं। रघुवंश में भी रघु (समुद्रगुप्त) द्वारा कम्बोजों, हूणों और पारसिकों के पराजय का उल्लेख इसे पुष्ट करता है।

7. सीमा के बाहर के द्वीप

इनमें केवल सिंहल का नाम लिया गया है और 'सर्वद्वीप वासिभिः' से अन्य द्वीपों की ओर संकेत है। लगता है भारत के सांस्कृतिक क्षेत्र में ये द्वीप भी सम्मिलित थे। सिंहल का प्रयोग 'लंका' के लिए हुआ है। सर्वद्वीप से अभिप्राय दक्षिण-पूर्वी एशिया के द्वीप से रहा होगा जहाँ इसके समय भारत ने सांस्कृतिक साम्राज्य स्थापित किया होगा।

चयनित उत्तराधिकारी और समस्या

[*प्रयाग स्त० ले० श्लोक 4, ''आर्यो हीत्युपगुह्य— पाह्येवमूर्वीमिति'' की व्याख्या*]

इस श्लोक से स्पष्ट है कि इसका पिता चन्द्रगुप्त प्रथम योग्यता का पारखी था—तत्वेक्षिणा। उसने अन्य तुल्य कुलज होने पर भी योग्यता के कारण उसे पृथ्वी पालन का कार्य सौंपा—पाह्येवमुर्वीमिति। इसकी पुष्टि ऋद्धपुर एवं पूना ताम्रपत्रों द्वारा भी होती है—त्पादपरिगृहीत (पिता द्वारा चुना हुआ)। यहाँ स्पष्ट है कि इसके और भी भाई इससे बड़े थे जिनमें से इसे चुना गया था। इससे उनमें इसके प्रति विरोध होना स्वाभाविक था। तभी वे 'मलानानने द्वीक्षितः' अर्थात् दुःखी होकर राज्याभिषेक को देख रहे थे।

रैप्सन और हेरास के अनुसार इसके बाद उसको भाइयों से गृह युद्ध करना पड़ा होगा। इसके लिए काच की मुद्राओं की प्राप्ति के आधार पर विरोधी दल का नेता उसका भाई (?) काच को ही माना गया। लेख के अनुसार—'संग्रामेषु स्वभुजबलविजिताः नियमुच्चापकाराः' अर्थात् कुछ को संग्राम में पराक्रम से जीता और कुछ को स्नेह से—स्नेहयुलैर्म्नोभिः। पर कुछ लोग काच और समुद्रगुप्त की मुद्राओं में तौल, उपाधि, उत्कीर्ण लेख की दृष्टिगत दोनों को एक-एक ही व्यक्ति मानकर काच को समुद्रगुप्त का दूसरा नाम मानते हैं जो उसका मौलिक नाम था। विजय के बाद उसने समुद्रतट तक विजय करने के कारण अपने को सनुद्रगुप्त नाम से संबोधित किया। पर यह बहुत मान्य नहीं प्रतीत होता।

समुद्रगुप्त की विजय और नीतियाँ

विजय क्रम के विषय में इस अभिलेख से शंका उत्पन्न होती है। यहाँ जो विजय का क्रम दिया गया है वह दक्षिणापथ से प्रारम्भ है। डेब्रुएल ने इसे ही विजय का सही क्रम बताया है। पर अभी उत्तरी भारत स्वयं अरक्षित था। फिर केन्द्र के पड़ोस को अरक्षित छोड़कर यह भला कैसे सम्भव था कि दूर दक्षिणापथ में जाकर युद्ध करता। पाटलिपुत्र से उसकी अनुपस्थिति का लाभ उठाकर उसके

शत्रु आक्रमण कर इतिहास ही बदल दिए होते। इसलिए यह क्रम गलत लगता है। वास्तव में वह पहले **आर्यावर्त** फिर आटविक राज्य, तब पूर्वी और उत्तरी सीमा, पश्चिम के गणराज्यों, को जीत कर ही दक्षिणापथ की ओर हाथ लगाया होगा जब वह उत्तर से पूर्ण सुरक्षित रहा होगा। उसके बाद विदेशी और द्वीपवासियों की ओर मुड़ा होगा। पर प्रश्न है कि प्रशस्तिकार ने फिर दक्षिणापथ उल्लेख पहले क्यों किया ? इसके पीछे कारण होगा कि प्रशस्ति लिखते समय जो सबसे प्रभावक गुण होता है उसी को आगे रखा जाता है। अशोक के बाद उत्तर के किसी शासक ने दक्षिण में इतनी विशाल विजय की बात सोची नहीं थी। अतः दक्षिण विजय को यहाँ पहले रखा गया है। ऐसा करना लेखक की भूल नहीं है।

दूसरे आर्यावर्त का युद्ध दो बार उसे क्यों करना पड़ा ? पहली बार उसे मगध पर राजा के रूप में अधिकार करने के लिए युद्ध करना पड़ा क्योंकि मगध का राजा तो पिता द्वारा यह बनाया गया था। पर इस अभिलेख से ज्ञात होता है कि दूसरों ने कब्जा कर लिया था या वे कब्जा के लिए आए थे। अतः उनको इसे पराजित करना पड़ा। इनमें रुद्रदेव कौशाम्बी का, मतिल बुलन्दशहर का, गणपतिनाग मथुरा का तथा कोतकुलज पूर्वी पंजाब और दिल्ली के शासक थे। ये सम्भवतः एक जुट होकर समुद्रगुप्त को मगध पर अधिकार से वंचित करने के प्रयास में थे। अतः उसने एक ही लड़ाई में 'एकेन....उन्मूल्य' इनको अपने भुजबल से अकेले उन्मूलित कर दिया। (उद्वेलोदित-बाहु-वीर्य्यरभसादेकेन येन क्षणादु मूल्य)। कुछ लोगों ने उत्तरापथ के दोनों युद्धों की सूची में समान नाम के कारण एक ही युद्ध की सम्भावना व्यक्त किया है पर यह गलत है क्योंकि एक युद्ध पाटलिपुत्र पर अधिकार के लिए हुआ था जिसमें आक्रमणकारियों को केवल उन्मूलित किया गया था और दूसरे में उनका सत्ता समाप्त कर अपने में उसने मिला लिया था। दूसरे द्वितीय युद्ध छिटपुट कई बार लड़ा गया होगा जबकि पहला युद्ध एक बार सम्भवतः पाटलिपुत्र के पड़ोस में लड़ा गया था क्योंकि यह पाटलिपुत्र के लिए हुए था। यद्यपि जायसवाल कौशाम्बी में इसका होना कौमदी महोत्सव के आधार पर मानते हैं जो कल्पनाजनित नाटक पर आधारित होने से अमान्य है।

ऊपर जिन राज्यों का उल्लेखत किया गया है उन सभी को समुद्रगुप्त ने जीता था। शासन की सुविधा और विजय के स्थायित्व के लिये विभिन्न क्षेत्रों के विजय में उसने विविध नीतियों का अनुसरण किया था। यह उस जैसे एक विद्वान् के लिए अत्यन्त आवश्यक था कि वह इतिहास के पूर्व अनुभव से लाभ उठाकर ऐसा करे। उसकी विविध क्षेत्रों में विजय के सम्बन्ध की नीतियाँ निम्न थीं :

1. आर्यावर्त के प्रथम युद्ध में अच्युत, नागसेन तथा कोतकुलज को उन्मूलित किया— उन्मूल्यात....।

2. सीमावर्ती राज्य और पश्चिमी भारत के गणराज्यों को आदेश दिया था कि वे सर्वकरदान, आज्ञाकरण और प्रणाम करने हेतु उपस्थित होकर राजा को सन्तुष्ट करें। (सर्व्व-कर-दानाज्ञाकरण-प्रणामागमन-परितोषित-प्रचण्ड-शासनस्य)।

3. आर्यावर्त के राजाओं को उन्मूलित किया था जिससे उसका प्रताप फैला (प्रसभोद्धरणोद्धृत्त-प्रभाव-महतः)।

4. आटविक प्रदेश के राजाओं को अपना सेवक बना लिया (परचारकीकृत सर्व्वाटविक-राजस्य)।

5. दक्षिणापथ के राजाओं को ग्रहण करके पुनः उन पर अनुग्रह करके छोड़ दिया जिससे उसके प्रताप की वृद्धि हुई (राजग्रहण-मोक्षानुग्रह-जनित-प्रतापोन्मिश्र महाभागस्य)।

6. दक्षिण पश्चिम की विदेशी जातियों तथा द्वीपवासियों को बाध्य किया कि वे आत्मनिवेदन करें, कन्याओं का उसे दान भेंट दे और अपने विषय-भुक्ति पर शासन करते रहने के लिए गरुडांकित आज्ञापत्रों की याचना करें (आत्मनिवेदन-कन्योपायनदान-गरुन्मदङ्कस्व-विषयभुक्तिशासनायाचन)।

दक्षिणापथ के विजय क्रम में डेब्रएल का अनुमान है कि पहले उड़ीसा के समीपस्थ राज्यों को जीता गया होगा। फिर दक्षिण की ओर बढ़ते हुए कृष्णा नदी तक गया होगा। यहीं पूर्वीघाट के शासकों के सम्मिलित संघ ने उसे परास्त किया था। पर यह काल्पनिक है। समुद्रगुप्त का कहीं पराजित होने का उल्लेख नहीं है। अभिलेख से लगता है कि उसके दक्षिणी-पूर्वी मध्य प्रदेश के शासकों को पहले परास्त किया होगा तथा उड़ीसा के राजाओं को जीतते हुए सुदूर दक्षिण में कांची तक गया होगा।

जायसवाल के अनुसार दक्षिणापथ के राजाओं के दो संघों ने अलग-अलग इससे युद्ध किया था। एक संघ था कोराल के भण्टराज के अधीन एरण्डपल्लव दमन और कोट्टूर का स्वामिदत्त तथा दूसरा संघ शेष नौ राजाओं का कांची के विष्णुगोप के अधीन था। पर इसका कोई ऐतिहासिक आधार नहीं हैं। दण्डेकर के अनुसार दक्षिणापथ के सभी राजा कांची के विष्णुगोप के अधीन संघ बनाकर इकट्ठे लडे थे। पर यह असम्भव लगता है कि इतने दूर के राजाओं का कोई गुट बना होगा। अतः अलग-अलग युद्धों में समुद्रगुप्त ने इन्हें परास्त किया होगा।

समुद्रगुप्त के दक्षिणी भारत से लौटने का मार्ग

दक्षिणी विजय के अभियान में कलिंग प्रदेश से चलकर पूर्वीघाट होते हुए वह दक्षिण की ओर बढ़ा था। पर वह लौटा किस मार्ग से ? इसमें दो मत हैं। कुछ इतिहासकार उसके इस अभियान को पूर्वी घाट तक ही सीमित मानते हैं जहाँ से वह उसी मार्ग से लौट आया। पर कुछ कतिपय वर्णित स्थानों का समीकरण पश्चिमी घाट के स्थानों से करके उसके लौटने का मार्ग पश्चिमी तथा मध्य भारत होकर बताते हैं। ऐसा मानना निम्न स्थलों के पहचान में भेद के कारण हैं—

1. पलक्क—इसकी पहचान स्मिथ पश्चिमीघाट के मालावार जिले के उत्तर में स्थित पालघाट से की है जो पश्चिमी घाट में है।

2. देवराष्ट्र—फ्लीट के अनुसार यह महाराष्ट्र था। सुथियंथियस और दीक्षित भी इसे वहीं महाराष्ट्र के खानपुर तालुक के देवराठा ग्राम बताते हैं। महाराष्ट्र पश्चिमी घाट में है।

3. एरन्डपल्ल—फ्लीट, दीक्षित आदि महाराष्ट्र के पूर्वी खानदेश जिले का एरण्डोल नामक स्थान मानते हैं।

ऐसा मानने पर वह पूर्वीघाट से होकर पश्चिमीघाट गया था। वहीं से मध्य देश होकर मगध लौटा। पर ये समीकरण मान्य नहीं लगते क्योकि पूर्वीघाट के स्थानों के बीच-बीच में पश्चिमीघाट का उल्लेख भौतिक दृष्टि से सम्भव नहीं लगता। अतः ये सभी पूर्वीघाट के ही स्थान होंगे। डैब्रुएल ने ठीक ही पूर्वीघाट में स्थित पल्लक की समता कृष्णा नदी के तटवर्ती निलौर जिले के पल्लकड़ से जो पल्लवों की राजधानी थी, देवराष्ट्र को विजगापट्टम जिले में वेलमञ्चिली प्रदेश से तथा एरण्डपल्ल को उड़ीसा के तटवर्ती एरण्डपल्ली नगर से की है। अतः जब समुद्रगुप्त कभी महाराष्ट्र की ओर गया ही नहीं तो पश्चिमीघाट होकर लौटने की बात उठती ही नहीं। इसकी पुष्टि में हम यह भी तर्क दे सकते हैं कि—

(i) पश्चिमीघाट से होकर लौटने में मध्यदेश में वाकटकों से इसका युद्ध हुआ होता जिसका

कहीं उल्लेख नहीं है। वाकाटकों के सम्बन्ध में स्मिथ ने लिखा है—The Vakataka Kings occupied such an important geographical position in which he could be of much service or disservice to the Northern invador in the dominons of the Kashatraps of Gujrat or Saurashtra. अगर समुद्रगुप्त पश्चिमी घाट की ओर जाता तो मध्य प्रदेश होकर ही उसे लौटना पड़ता और वहाँ वाटकों से इसकी मुठभेड़ अवश्य होती। यदि ऐसा होता तो प्रशस्तिकार अवश्य ही इसका उल्लेख करता। परन्तु ऐसा न करने से स्पष्ट है कि वह मध्य प्रदेश में आया ही नहीं कि वाकाटकों के साथ इसका सीधा सम्बन्ध बनता। उनके केवल उसके भाण्डलिक तक ही अपने को सीमित रखा क्योंकि एक स्थान पर महाकान्तारक व्याघ्रराज का उल्लेख है।

(ii) पूर्वीघाट से पश्चिमीघाट जाने के रास्ते के बीच में आने वाले राज्यों का भी विजय अभियान में वर्णन होना चाहिए था जो अप्राप्य है।

अतः समुद्रगुप्त ने पूर्वीघाट से दक्षिण भारत पर आक्रमण किया था और उसी मार्ग से अपनी राजधानी लौट आया।

राज्य विस्तार

इस प्रशस्ति में उसने विजित राज्यों में केवल आर्यावर्त के राजाओं को छोड़कर जिन्हें उसने उन्मूलित किया था शेष राज्यों को बने रहने दिया और उन्हें निश्चित अनुबन्धों के साथ शासन करने की छूट दी। यही नीति विदेशी जातियों के साथ भी अपनायी। पर उत्तरापथ या आर्यावर्त के वे क्षेत्र जिनमें प्रयाग से पूरब विहार तक के राज्यों का कोई उल्लेख नहीं है, लगता है उसको पैत्रिक उत्तराधिकार में लिया था जिस पर उसका सीधा शासन था। इसमें सम्मिलित हुए आर्यावर्त के उन नौ राजाओं का राज्य था जो पश्चिमोत्तर, और मालवा के राजा थे। मध्य प्रदेश एवं पश्चिमी बंगाल के कुछ भाग सम्मिलित थे तथा जिन्हें उसने उन्मूलित किया था। इस आधार पर कंहा जा सकता था कि गंगा और यमुना के क्षेत्र में उसका अधिकार व्याप्त था। तभी उस समय के मन्दिरों के चौखठों पर गंगा-यमुना की आकृतियाँ क्रमशः मकर और कर्म पर आरुढ़ मिलती हैं। इसके कुछ सिक्कों पर सिंहवाहिनी दुर्गा को देखकर डा॰ रायचौधरी का अनुमान है कि उसका साम्राज्य हिमालय से विन्ध्याचल तक था। शेष सीमा के राज्य, पश्चिम के गणराज्य, आटविक प्रदेश के शासक, दाक्षिणापथ के राजा और दक्षिण-पश्चिम की विदेशी जातियाँ जो इसके राज्य को चातुर्दिक प्राचीर की तरह घेरी थी वे इसकी करद सामन्त बन चुकी थीं। इन पर उसका मात्र प्रभाव एवं नियंत्रण था।

शासन पद्धति का परिचय

यहाँ शासकों की दो उपाधियों का उल्लेख है—महाराज एवं महाराजाधिराज। महाराज अधीनस्थ शासक का द्योतक है ऐसा डा॰ सिन्हा, चट्टोपाध्याय आदि मानते हैं, और महाराजाधिराज स्वतन्त्र शासक था।

समुद्रगुप्त के लिए यहाँ प्रयुक्त 'लोकधाम्नोदेवस्य' (अर्थात् पृथ्वी पर वास करने वाला देवता) से ज्ञात होता है कि राजा में देवत्व की मान्यता उसके समय थी। वहीं प्रयुक्त है 'प्रिथिव्याम-प्रतिरथस्य' अर्थात् जो (राजा) पृथ्वी पर विचरण करने वाला अप्रतिरथ (विष्णु) है। यह भी इसीकी पुष्टि करता है।

कुछ अधिकारियों के पदों का भी इसमें उल्लेख है, यथा आयुक्त, पुरुष, खाद्यटपाकिक महादण्डनायक, कुमारामात्य और संधिविग्रहक आदि ये पद शासन में कार्यरत अधिकारियों के थे।

इस अभिलेख की पंक्ति 7 में समुद्रगुप्त के लिए 'आर्यो' श्रेष्ठ शब्द का प्रयोग है। वहीं तुल्य-कुलज-म्लानानो-द्विक्षितः-परिवार के लोग मलिन चेहरे में दीखते थे। साथ ही 8वीं पंक्ति में लिखा गया है—पाह्येव मुर्वी मिति अर्थात् इस भूमण्डल का पालन करो। स्पष्ट है कि योग्यता के आधार पर राजा की नियुक्ति होती थी जैसा समुद्रगुप्त के सम्बन्ध में हुआ था। इसके लिए सभासदों की भी स्वीकृति आवश्यक होती थी तभी पंक्ति 7 में 'सम्य' (सभा) का उल्लेख हैं तथा उनके लिए विशेषण प्रयुक्त हैं 'उच्छवस' = आनन्द की सांस लेना। स्पष्ट है कि राज्यपद निर्वाचित था।

गुप्त वंशावली

पंक्ति 28 में अंकित है—"देवस्य महाराज-श्रीगुप्त-प्रपौत्रस्य महाराजा-श्री-घटोत्कच पौत्रस्य महाराधिराज-श्री-चन्द्रगुप्त-पुत्रस्य लिच्छवि दौहित्रस्य महदेव्यां कुमार-देव्यां उत्पन्नस्य महाराजाधिराज-श्री-समुद्रगुप्त"—इससे समुद्रगुप्त के पूर्वराजाओं और उसके वंश का परिचय मिलता है। यह पहला गुप्त अभिलेख है जिससे गुप्त वंश के शासकों का क्रम उसके समय तक ज्ञात होता है। इसमें पहला राजा इसका प्रपितामह श्रीगुप्त का उल्लेख है जिसकी उपाधि 'महाराज' दी गई है। जबकि इसके पिता चन्द्रगुप्त को 'महाराजाधिराज' कहा गया है। इस विभेद से स्पष्ट है कि श्रीगुप्त एक अधीनस्त या सामन्त शासक था। इसी प्रकार इसके प्रपिता तथा श्रीगुप्त का पुत्र घटोत्कच्छ को भी यहाँ महाराजा कहा गया है। यहाँ घटोत्कच्छ के साथ गुप्त शब्द नहीं जुड़ा है। इससे दो बातें स्पष्ट होती है एक कि यह अपने पिता की तरह का सामन्त शासक था तथा इसके समय तक इस वंश का नामकरण गुप्त वंश का नहीं हुआ था। इसके बाद इसके पिता चन्द्रगुप्त को महाराजाधिराज कहा गया है। यह चन्द्रगुप्त विभेद स्पष्ट करता है कि इस समय एक स्वतंत्र शासक बन गया था तभी इसके प्रपिता 'श्रीगुप्त' के नाम पर इसका वंशज गुप्त कहलाया। इसीसे अब इस वंश के सभी शासकों के नाम के अन्त में गुप्त शब्द मिलता है। जैसे—समुद्रगुप्त।

अब प्रश्न यह है कि पहले दो शासक किसके सामन्त थे ? सिलवांलेवी और सुधारकर चट्टोपाध्याय ने अनेक प्रमाणों के आधार पर इन्हें 'मुरुण्डों' का सामन्त बताया है। लेवी ने विदेशी विवरणों को जैनग्रंथों का आधार बनाया है जबकि चट्टोपाध्याय ने वायु और विष्णु पुराणों के विश्वसफणि को इस वंश का शासक माना है। फ्लीट तथा आर॰ डी॰ बनर्जी ने शकों का सामन्त बताया है जो मगध पर शासन करते थे। विंसेण्ट स्मिथ और काशी प्रसाद जायसवाल ने इन्हें लिछवियों का सामन्त बताया है क्योंकि चन्द्रगुप्त की मुद्राओं पर लिछवयः लेख अंकित है तथा समुद्रगुप्त ने अपने को 'लिछवी दौहित्रः' इस अभिले में कहा है। कुमारगुप्त तृतीय की भीतरी राजमुद्रा में भी इसका उल्लेख है। अतः ये लिछवियों के ही सामन्त रहे होंगे।

समुद्रगुप्त का चरित्र चित्रण

इस अभिलेख से उसके चरित्र के निम्न गुणों का ज्ञान मिलता है—

1. धर्म प्राचीर बंधः (धर्म के बन्धन में जो बंधा है)।
2. शास्त्र तत्वार्थ भर्तुः (शास्त्रों के तत्त्वों को समझने वाला)।
3. कविता कीर्ति राज्य भुनक्ति (काव्य के क्षेत्र में उसकी कीर्ति व्याप्त थी)।
4. शशिकर शुचयः कीर्तयः (चन्द्रमा के समान धवल कीर्तिवाला)।
5. उसका शरीर युद्ध क्षेत्र में अनेक शस्त्रों के प्रहार से घायल था।
6. विदेशी जातियों तथा द्वीपवासियों से उसका सम्बन्ध था।

7. कूटनीतिज्ञ था—विविध राज्यों के साथ भिन्न नीतियाँ अपनाया।
8. लोक-कल्याण में धनद, वरुण और इन्द्र के समान था।
9. संगीत में गुरु, तम्बरू और नारद जैसे आचार्यों को पराजित किया था।
10. उसके ज्ञान, दान, शौर्य की ख्याति गंगा की धारा की तरह सर्वत्र व्याप्त थी।
11. वह महान् विजेता था।

2. दुर्जनपुर का रामगुप्त का जैन प्रतिमा लेख
(Jain Sculpture Inscription of Ramgupta of Durjanpur)

स्थान : दुर्जनपुर ग्राम, जिला - वेसनगर (विदिशा), म॰ प्र॰

लिपि : गुप्तकालीन ब्राह्मी

भाषा : संस्कृत

काल : चौथी शती का उत्तरार्द्ध

विषय : जैन तीर्थंकर की मूर्तियों का निर्माण

सन्दर्भ : श्रीराम गोयल का गुप्तकालीन का अभिलेख, पृ॰ 3-6, वासुदेव उपाध्याय, गुप्त अभिलेख, पृ॰ 128

[प्रथम लेख]

मूल-पाठ

1. भागवतोऽर्हतः चन्द्रप्रभस्य प्रतिमेय कारिता म–
2. हाराजाधिराज श्री रामगुप्तेन उपदेशात् पाणिपा–
3. त्रिक्[1] चन्द्रक्षमाचार्य्य क्षम [प]ण–श्रमण-प्रशिष्य [स्य]चा–
4. र्य्यः सर्प्पसेनक्षम [प]ण शिष्यस्य गोलक्यान्त्या
   [:] सत्पू [तु] त्रस्य चेल्ल[2] क्षत्र [प] णस्येति ॥

हिन्दी अर्थ

भगवान अर्हत् चन्दप्रभ की यह प्रतिमा महाराजाधिराज श्री रामगुप्त द्वारा पाणिपात्रिक आचार्य क्षपण श्रमण चन्द्रक्षमा के शिष्य, आचार्य सर्यसेन के शिष्य गोलक्यान्तिक सत्पुत्र क्षमण चेल्ल के उपदेश से बनवायी गयी।

[द्वितीय लेख]

मूल-पाठ

1. भगवतोऽर्हतः पुष्पदन्तस्य प्रतिमेयं कारिता म–
2. हाराजाधिरज श्रीरामगुप्तेन उपदेशात् पाणिपात्रिक
3. चन्द्र क्षम (प) [णाचा] यर्य् [क्षम(प)ण] श्रमण प्रशि[ष्य्]
4. ————ति

---

1. = करप्रात्री
2. = चेला